स्वतंत्रता आन्दोलन में आर्य समाज और चौधरी रणबीर सिंह

डा. राम प्रकाश

मुख्य व्याख्यान
(23 मार्च, 2011)

स्वतंत्रता आन्दोलन में आर्य समाज और चौधरी रणबीर सिंह

डा. राम प्रकाश

प्रकाशक :
चौधरी रणबीर सिंह शोधपीठ
महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक

दो शब्द

महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय में स्थित चौधरी रणबीर सिंह शोधपीठ द्वारा गत 23–24 मार्च, 2011 को महान स्वतंत्रता सेनानी चौधरी रणबीर सिंह की स्मृति में भारत के स्वतंत्रता आन्दोलन में हरियाणा की भूमिका पर संगोष्ठि का आयोजन किया गया था। इसका उद्घाटन करते हुए शिक्षाविद्, आर्य समाज के विद्वान एवं प्रख्यात सांसद (राज्य सभा) डा राम प्रकाश ने संगोष्ठि का मुख्य व्याख्यान दिया। इस व्याख्यान की विषयवस्तु भी स्वतंत्रता आन्दोलन में आर्यसमाज की भूमिका प्रमुख थी।

यह व्याख्यान अनेक अर्थ से महत्वपूर्ण है, जिसमें उन्होंने हरियाणा की उस समय की दशा एवं दिशा पर चर्चा करते हुए बताया कि आर्य समाज ने यहां जागृति की जोत जलाकर स्वतंत्रता आन्दोलन का बीज बोया और इसमें रोहतक जिला के डा. रामजी लाल व चौधरी मातू राम ने अग्रणी भूमिका अदा की, जिस विरासत को चौधरी रणबीर सिंह ने बखूबी निभाया और अन्त तक उन जीवन मूल्यों के प्रतीक रहे।

डा. राम प्रकाश ने 23 मार्च की महत्ता को उकेरते हुए स्वतंत्रता आन्दोलन में सरदार अजीत सिंह, सरदार किशन सिंह व उनके पुत्र अमर शहीद भगत सिंह की आर्य समाजी पृष्ठभूमि को याद किया और भगत सिंह, राजगुरू व सुखदेव के शहादत दिवस पर इस उपयुक्त विषय पर संगोष्ठि आयोजित करने में निहित सन्देश को भी याद कराया।

डा. राम प्रकाश के इस व्याख्यान को अलग से पुस्तिका रूप में प्रकाशित किया गया है, ताकि आम पाठक भी इसकी विषयवस्तु से लाभान्वित हो सके।

–शोधपीठ

डा. राम प्रकाश

(माननीय राज्यसभा सांसद)

मुख्य व्याख्यान

23 मार्च, 2011

मेरे बहुत पुराने मित्र, छोटे भाई, साथी, सहयोगी और आपके विश्वविद्यालय के कुलपति व माननीय भाई आर.पी.हुड्डा जी, इस संगोष्ठि के सर्वेसर्वा सम्मानीय ज्ञान सिह जी, मंच पर विराजमान स्वतंत्रता संग्राम के अग्रणी सिपाही माननीय हरी राम आर्य जी, इस सभागार में बैठे बड़े–बड़े विद्वानों, बहनों और भाईयो!

आप और हम उन तीन शहीदों को याद कर रहे हैं, जो आज के दिन अपने देश की आजादी के लिए फांसी पर चढ़े थे और साथ–साथ याद कर रहे हैं चौधरी रणबीर सिंह को। उनकी स्मृति में इस संगोष्ठि का आयोजन किया गया है। मैं समझता हूँ कि आयोजकों की बुद्धिमतता है कि जो इतिहास में जुड़े हुए थे, उनके सम्मान में आज की संगोष्ठि का आयोजन किया है।

शहीद भगत सिंह हों, राजगुरू या सुखदेव हों, ये कोई सामान्य व्यक्तित्व नहीं थे। वे कैसे पैदा हुए? कैसे भगत सिंह, भगत सिंह बना? यह एक लंबी गाथा है। उनका कोई एक पीढ़ी का संघर्ष नहीं है। तीन पीढ़ी का संघर्ष है। अगर उनके दादा आर्य समाज की विचारधारा से प्रभावित न होते, अगर दादा जी, स्वामी दयानंद से यज्ञोपवित लेकर आर्य समाजी विचारों के न बनते तो उस समय यह भूमिका तैयार नहीं हो सकती थी, जिसने आगे चल कर भगत सिंह को

जन्म दिया। हालात व्यक्ति को पैदा करते हैं। बिना किसी हालात के किसी व्यक्ति का निर्माण नहीं होता। मैं कई बार सोचता हूँ। सन् 1947 से पहले देश में बड़े–बड़े लोग पैदा हुए। सन् 1947 के बाद इस बात की होड़ लगी हुई है कि हम छोटे से छोटे आदमी को समझें। इसका कारण है कि उस वक्त लक्ष्य कुछ और था, लेकिन आज लक्ष्य कुछ और है। दादा किशन सिंह, जोकि हम सबके दादा हैं, परदादा हैं, वे एक ऐसे व्यक्ति थे, जिनकी नस–नस के अन्दर आर्य समाज था। मैं अपनी तरफ से कुछ नहीं कह रहा। भगत सिंह की भतीजी वीरेन्द्र सन्धु हैं, उन्होंने एक किताब लिखी है, 'युगदृष्टा भगत सिंह और उनके मृत्युंजय पुरखे', इसे राजपाल एण्ड सन्स ने इसे प्रकाशित किया है। मैं हर भाई से आग्रह करूंगा कि वे इसे खरीदें व इस किताब को पढ़ें। मुझे तो इतनी प्रिय लगी कि मैं एक बार इसकी चालीस प्रतियां लेकर आया, मैंने उसका अध्ययन किया और दूसरों को अध्ययन को अध्ययन के लिए दीं।

किताब का पहला ही वाक्य पढ़ोगे तो मोहित हो जाओगे। मैं नहीं समझता कि किसी साहित्यकार की, इतिहासकार की कलम उतनी सशक्त हो सकती है, जिसमें वीरेन्द्र सन्धु जी की है। वीरेन्द्र सन्धु इसमें लिखती हैं कि मेरे दादा एकदम आर्य समाजी थे। बैठे–बैठे कुछ न कुछ लिखते रहते थे। लोग पूछते थे कि बड़े सरदार जी क्या कर रहे हो? किसी को पता नहीं चलता था, कि वे लिखते क्या हैं? लेकिन बाद में पता चलता था कि वह आर्य समाज के बारे में कुछ पम्फलेट्स लिखते रहते हैं। हमारा दुर्भाग्य है कि आज वह साहित्य उपलब्ध नहीं है। वह आर्य समाज के दर्शनों का इजहार करते थे। लेकिन पूर्णतया वैदिक थे। वीरेन्द्र सन्धु लिखती हैं कि गाँव के लोगों की आर्थिक मदद करते हुए उन्होंने गाँव के अन्दर गुरूद्वारा बनवाया।

लेकिन, कभी मत्था टेकने नहीं जाते थे। क्योंकि, वे इसको भी एक तरह से मूर्ति पूजा ही मानते थे। आप विचारों की दृढ़ता देखिए। उनके बेटे ने सभी संस्कारों को लेकर, चाहे अर्जुन सिंह जी की चर्चा करो, चाहे किशन सिंह जी की चर्चा करो, उनके विचारों को लेकर एक वातावरण पैदा किया है इस देश में। वीरेन्द्र सन्धु जब भगत सिंह की माता के बारे में बात करती हैं तो संस्मरण लिखते हुए, कहती हैं कि एकबार उनसे पूछा गया कि कोई संस्मरण सुनाओ, तो उन्होंने अपने विवाह का संस्मरण सुनाया। संभवतः उनके पिता का नाम, अगर मैं गलती नहीं करता, बलिराम सिंह था। कहने लगी कि गाँव में इस बात की चर्चा थी कि बलिराम सिंह के घर ऐसा दामाद आया है कि वह विवाह संस्कार के मंत्र भी खुद बोलता है। अन्दाजा लगाएं कि कितनी बड़ी छाप थी इस परिवार के ऊपर। उस वातावरण ने भगत सिंह को पैदा किया। भगत सिंह और जगत सिंह, दोनों को यज्ञवेदी पर बैठा कर यज्ञोपवीत संस्कार करवाया गया तो दादा ने खड़े होकर एक को बाईं तरफ लिया और दूसरी को दाईं तरफ लिया और कहा कि इन दोनों बेटों को देश की बलिवेदी पर अर्पित करता हूँ।

जब भगत सिंह अपना घर छोड़कर गए, तो वे मेज की दराज में एक पत्र लिख कर छोड़ गए और उसमें लिखा कि ''दादा हमें आपने देश के लिए अर्पित किया है, मैं देश के लिए हूँ। जो लक्ष्य आपने रखा था, मैं उसके लिए चल पड़ा हूँ।'' अब आपको यह जानकर सुखद अनुभूति होगी कि उन्होंने जो पत्र लिखा, उस पर 'ओउम' लिखा हुआ था। जिस तरह आर्य समाज के लोग तीन अक्षरी 'ओउम' लिखते हैं, उस तरह का 'ओउम' लिखा हुआ था। उनके बाकी पत्रों को भी आप ध्यान से देखिए, उनपर 'ओउम' लिखा हुआ है, उनमें नमस्ते लिखा

हुआ है, जिसका मतलब यह है कि परिवार की एक पृष्ठभूमि है, एक विचारधारा है, एक चिन्तन है। उसी चिन्तन ने भगत सिंह के पिता को बलिदानी बनने का एक तरीका दे दिया। जब सरदार किशन सिंह ने विधानसभा का चुनाव लड़ा तो पार्टी ने उनको एक गाड़ी दी। चुनाव के बाद उन्होंने गाड़ी चुनाव दफ्तर में खड़ी की और कहा कि आप अपनी गाड़ी संभालो, अब चुनाव का काम हो चुका है। वो हालात देखें और आज के हालात देखें, जिस वातावरण में, मैं और आप जी रहे हैं, उसको देखें। इन दोनों हालातों की तुलना करके देखें कि हम क्या हैं?

सरदार अजीत सिंह इतने कट्टर आर्य समाजी थे कि लोगों ने यह कहकर ठुकरा दिया था कि यह तो आर्य समाजी है। इससे व्यवहार नहीं हो सकता है। जमाना तो वह भी यही था, जिसमें चापलूसी का काम था। बाल कृष्ण परमहंस जी ने कुछ लाईनें लिखी हैं और ऐसे लोगों के सन्दर्भ में संभवतः ये टिप्पणी करते हुए उन्होंने कहा है –

या बबूल को वट–वृक्ष कहो,
या धूप ताकते खड़े रहो।
अन्दाज तीसरा जीने का,
हमको तो मालूम नहीं।।

उस जमाने के अन्दर एक वातावरण था, जिसमें भगत सिंह पैदा हुआ।

अजीत सिंह के बारे में एक घटना है। दशकों, 34 वर्षों के लगभग, वहां रहे। निडर आदमी थे, यह कहना कि वह शहीद हो गये, उन्होंने बलिदान दे दिया या किसी चौंक के पीछे रहे, अन्डरग्राऊण्ड रहे, वाक्य साधारण हैं। कहना आसान है, लेकिन जो आदमी जी रहा होता है, उससे पूछो कि उसके ऊपर क्या बीतती है?

वीरेन्द्र सन्धु ने एक बात और लिखी है कि ''पड़ौस की औरतें हमारी चाची के पास आती हैं और उन्हें कहती हैं कि सरदारनी! सरदार की कोई चिठ्ठी तो नहीं आई? ना बहन! नहीं आई। कोई मेम रख ली होगी। अब उनको तेरी क्या जरूरत?'' वह तो कहकर चली जाती थी। यह मालूम नहीं कि यह फिकरा संवेदना में कहा था या कैसे कहा था? लेकिन, जिसको ये फिकरा कहा गया था, उसके ऊपर क्या बीतती होगी, इसका कौन अन्दाजा लगा सकता है?

इतिहासकारों ने भी देश की आजादी के अन्दर जो खून का बलिदान हुआ है, उसका लेखाजोखा तो तैयार किया है! लेकिन, जो भावनाओं का बलिदान हुआ है, उसका लेखाजोखा किसी ने नहीं किया। वह असंभव सा लेखाजोखा है।

एक ऐसे वातावरण में एक व्यक्ति पैदा हुआ। शहीदों को मैं बांटता नहीं। शहीद सबकी धरोहर होते हैं। शहीद किसी एक का नहीं होता, किसी एक कौम का नहीं होता। मैं तो यह समझता हूँ कि किसी एक देश की भी विरासत नहीं होता। वह तमाम दुनिया के लोगों को प्रेरित करता है, लेकिन मैंने एक पृष्ठभूमि की बात कहनी चाही, वहां से चला एक इतिहास और वह पूरा होता है, हुड्डा परिवार के साथ। चाहे दादा मातूराम थे, चाहे रामजी लाल जी थे और चाहे उसके बाद चौधरी रणबीर सिंह, उसी प्रेरणा को ले करके आगे चले।

जब अजीत सिंह जी को काले पानी की सजा हुई तो चौधरी मातूराम के साथ भी वही बात हुई। उन्हें इसलिए गिरफ्तार नहीं किया गया कि कहीं यहां किसान बगावत न कर दें। अंग्रेज सोचकर काम करता था। बिना सोचे–समझे नहीं करता था। उसकी वजह से कई आदमियों को वह स्टेट्स, वो दर्जा जिन्दगी में मिलने से रह गया, जिस

दर्जे के वे हकदार थे। मैं यह समझता हूँ कि काला पानी की सजा हो जाती, तो कृति इतिहास में वही नाम होता हुड्डा परिवार का जो भगत सिंह का नाम है या सरदार अजीत सिंह का नाम है।

मैं इसे एक रूप में और कहना चाहता हूँ। नेता जी सुभाष चन्द्र बोस के साथ ढ़िल्लों, सहगल और शाहनवाज, ये तीन व्यक्ति कंधे से कंधा मिलाकर काम करते थे। वे एक बार कुरूक्षेत्र यूनिवर्सिटी में आए थे। मेरा यह सौभाग्य है कि वे एक दिन सुबह–सुबह आए, उन्होंने दरवाजा खटखटाया। आकर कहने लगे कि ''मैंने रैस्ट हाऊस छोड़ दिया है।'' मैं घबरा गया कि किसी ने बदतमीजी कर दी होगी। किसी को क्या पता कि कर्नल ढ़िल्लों कितना बड़ा आदमी है? मैंने उनके घुटने छु कर माफी मांगी। वे कहने लगे कि ''नहीं–नहीं ऐसी कोई बात नही है। अपनी मर्जी से छोड़कर आया हूँ।'' मैनें कहा कि ''फिर अब क्या हुक्म है?'' कहने लगे कि ''मैं अब इस मकान में रहूँगा। मैंने अपने लिए कमरा छांट लिया है। ऊपर के जो दो कमरे हैं, उनमें रहूँगा और तू मेरा होस्ट नहीं है।'' मेरा बड़ा लड़का उस वक्त 10–15 साल का होगा। कहने लगे कि ''मेरा होस्ट वह है, मेरे प्रोग्राम वह निश्चित करेगा। वह जाने और मैं जानूं। तू आराम से बैठ।''

रात को वे सोफे पर बैठ जाते। हम खाना खाकर नीचे बैठ जाते। वे भी इस बात का ध्यान रखते कि सबने खाना खा लिया है। अब बैठ कर बातें करेंगे। उस वक्त उन्होंने एक बात कही थी, जिस बात के लिए मैंने इस प्रसंग को दोहराया। उन्होंने कहा कि ''अगर उस वक्त हम तीनों कर्नल ढ़िल्लों, सहगल और शाहनवाज को फांसी की सजा हो जाती तो हिन्दुस्तान में यह त्रिमूर्ति भगत सिंह, राजगुरू और सुखदेव के बाद ऐसी ही दूसरी त्रिमूर्ति होती।''

यह एक परंपरा का चलन है। भौतिक इतिहास जुड़ा हुआ है, उनके साथ और जब अजीत सिंह अण्डर ग्राउण्ड हुए तो वे सन्यासी का भेष बनाकर चौधरी मातूराम जी के परिवार में रहे। किसी को पता ही नहीं लगा कि ये आर्य समाज का साधु है या कौन है? उन्होंने कुछ किताबें लिखीं थीं। मिलती वे भी नहीं हैं। 'विधवा की पुकार' नाम से पुस्तिका लिखी थी। आर्य समाज के प्रभाव की वजह से। हमारा दुर्भाग्य कि आज हमारे पास वह साहित्य नहीं है। वह देश की आजादी की परंपरा चली, जिसमें लाला लाजपतराय ने लाठियां खाईं, मैं नहीं समझता कि लाला लाजपतराय का देहावसान लाठियों की चोट से हुआ। शारीरिक चोट से नहीं हुआ। लेकिन, जो लाठी भारत की अस्मिता पर पड़ी, भारत के स्वाभिमान पर पड़ी, एक अंग्रेज भारत के अस्मिता के ऊपर, भारत के स्वाभिमान पर चोट कर सकता है, उस चोट को लाला जी नहीं सह पाए और शहीद होकर चले गए। उस परिवार का, इस परिवार के साथ, हुड्डा जी, रणबीर जी के परिवार के साथ जो संबंध है, वह मैं अपने आप, अपने शब्दों में नहीं कह रहा, के. डब्लू.जोन्स ने आर्य धर्म पर एक किताब लिखी है। शायद आज से 40 साल पहले लिखी। उसमें उसने आधा पृष्ठ इस बात पर लिखा है कि हरियाणा में जो जन क्रांति हुई, हरियाणा में आर्य समाज का जो प्रचार हुआ, वह दो परिवारों की वजह से है, एक लाला लाजपतराय और दूसरा मातूराम जी, रामजी लाल का परिवार था। इनकी वजह से ही यह सब संभव हुआ। यह मैं नहीं कह रहा हूँ, यह तो एक विदेशी इतिहासकार कह रहा है और तथ्यों के आधार पर कह रहा है। मैं कहूँ तो यूं लगेगा कि क्योंकि आजकल चौधरी भूपेन्द्र सिंह हुड्डा चीफ मीनिस्टर है, शायद उनको खुश करने के लिए कह रहा होगा। ऐसी

बात नहीं है। मैं आर्य समाज के इतिहास के साथ कोई किसी किस्म की खिलवाड़ नहीं करना चाहता। उन्होंने लिखा है कि एक वर्ग के अन्दर लाला लाजपतराय ने काम किया और दूसरे किसान वर्ग के अन्दर जो काम इस परिवार ने किया, उसकी वजह से एक जागृति पैदा हुई, एक ऊर्जा पैदा हुई। कृपया आप मेरी बात को उसी भावना से लें, जिस भावना से मैं कह रहा हूँ।

यूं तो सारा हिन्दूस्तान गुलाम था। रियासतें और भी ज्यादा गुलाम थीं। तमाम हिन्दूस्तान पिछड़ा हुआ था। लेकिन, जिस क्षेत्र को आज हरियाणा कहते हैं, यह तो ज्यादा पिछड़ा हुआ था। उसी हरियाणा में वही रोहतक क्षेत्र, आज प्रदेश का अग्रणी क्षेत्र है और वह आजकल हरियाणा की राजनैतिक राजधानी माना जाता है। जो विचार यहां से पनपता है, वह तमाम हरियाणा को प्रभावित करता है। इसको क्या कहूं तमाम लोगों का प्रवेश कहा जाता है।

पिता जी के साथ कभी शहर में चला जाता और मूर्खता की बात कोई हो जाती तो कहते कि तूं तो फलां का फलां ही रहा। मैं गलत बात नहीं कह रहा हूँ। लेकिन, अगर यहां जागृति आई है, अगर हरियाणा के इस क्षेत्र ने तरक्की की है तो इसमें सबसे ज्यादा योगदान अगर किसी प्रकार का है तो आर्य समाज के प्रचार का है। किसी दूसरे का योगदान इसमें नहीं है। मैं इस नाते आपसे बात कह रहा हूँ कि ऋषि दयानंद की शिक्षाओं ने यहां के आदमियों को जागृत किया और ऋषि दयानंद ने इस बात को समझा कि यहां का किसान, जो जाट वर्ग से ताल्लूक रखता है, वह भोला है। जैसे हम किसी अपने भाई को, जो भोला हो, चाहे वो गलती कर दे, कोई मूर्खता की बात कर दे, उसे बहुत प्यार से उसके गाल पर थप्पड़ लगाते हुए कहेंगे, तू तो भोला है।

इसी तरह से दयानंद ने सत्यार्थ प्रकाश में, अगर किसी के नाम के साथ जी लगाया है, तो जाट के साथ लगाया है, 'जाटजी' कहकर पुकारा है। उन्होंने ऐसा उसके भोलेपन की सराहना करते हुए कहा है। यह ऋषि दयानंद की शिक्षाओं का प्रभाव पड़ा है, जिसने सारे वातावरण को बदलने का प्रयास किया।

तरक्की के लिए राजनीतिक गुलामी से मुक्ति ही नहीं, बल्कि शिक्षा की भी जरूरत थी। सामाजिक उन्नति होनी भी जरूरी थी। लेकिन, सामाजिक उन्नति के अन्दर यहां की जो व्यवस्थाएं थीं, वे बहुत ज्यादा वाजिब थीं। उसी तरह से स्वामी दयानंद ने 'सत्यार्थ प्रकाश' लिखा। एक बृजानंद शर्मा, सनातन धर्म के बहुत बड़े विद्वान हुए। शुरू में वे आर्य समाज के प्रभाव में थे। लेकिन, जब उनको लगा कि रोजी–रोटी तो दूसरी जगह अच्छी मिल सकती हैं तो उन्होंने फिर 'सत्यार्थप्रकाश' के विपक्ष में 1940 में लन्दन में एक किताब लिखी, जिसका उन्होनें नाम रखा, 'वैदिक सत्यार्थ प्रकाश'। उन्होंने यह दिखाना चाहा कि यह सत्यार्थ प्रकाश आर्य समाजियों का मनगढ़ंत है। लेकिन, जो असली सत्यार्थ प्रकाश है, वह तो मेरे पास है। उसके अन्दर जो कुछ लिखा गया है, उसकी मैनें अपनी किताब में कुछ चर्चा की है। सारे प्रसंग आपके सामने नहीं कह पाऊंगा। उसमें उसने गिन–गिन कर लिखा है और हर बिरादरी का नाम लेकर लिखा है, चाहे वह बनिया है, चाहे वह लोहार है, चाहे वह सुनार है, चाहे वह नाई है, झीमर है। उसने इन सबको शुद्र कहा है। और शूद्र ही नहीं कहा, उसने इसमें दो किस्म के शूद्र माने हैं। एक वे जो छुए नहीं जा सकते और दूसरे जिनको छुआ तो जा सकता है, लेकिन, उनके साथ खाने–पीने का व्यवहार नहीं हो सकता। कुछ लोगों को उनमें रखा,

जिनके साथ खाने–पीने का व्यवहार न हो। आज हम जिसे दलित वर्ग कहकर पुकारते हैं, उसको उनमें रखा, जिनके साथ खाने–पीने का, छूने का व्यवहार नहीं हो सकता था।

एक अजीब स्थिति रही, उस माहौल में। उस वक्त उसने प्रश्न पैदा किया कि एक मिस्त्री एक मन्दिर बनाता है, एक मिस्त्री मूर्ति का निर्माण करता है, क्या उसका मन्दिर में जाने का हक है? वह इन सारी जातियों का नाम लेकर कहता है कि नहीं, कोई हक नहीं है। अगर वह उसके परिसर में भी चला जाएगा तो जो देवता का प्रभाव है, वह नष्ट हो जाएगा और उस राज्य के अन्दर अकाल पड़ेगा, राजा की मौत हो जाएगी। राजा ऐसे व्यक्ति का जो जन्मना ब्राह्मण नहीं है और ब्राह्मणोचित कार्य करना चाहता है, तो वह उसका वध कर दे। ऐसे शब्द उसमें है।

मैनें पृष्ठ और दूसरी चीजें कोट की हैं। मैं कई बार सोचता हूँ कि एक आदमी मूर्ति बनाता है, मन्दिर बनाता है। मूर्ति वह देख नहीं सकता, मूर्ति वह छू नहीं सकता। हालत तो ऐसी है कि जैसे माँ बेटे को जन्म तो दे, लेकिन फिर उसे छाती से लगा कर उसका मुखड़ा चूम न सके। इससे बड़ी दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति और क्या हो सकती है? इससे अजीब विडम्बना और क्या हो सकती है। मैं सोचता हूँ कि सींखचों के पार, दरवाजे के पीछे बन्द उस मूर्ति की कल्पना करके, वह व्यक्ति जिसने उसे तराश करके मूर्ति बनाया है, वह व्यक्ति खड़ा सोचता होगा कि मेरे हाथों के तराशे हुए पत्थर के सनम, भगवान बने बैठे हो, बुतखानों में। ऋषि दयानंद और आर्य समाज के आने से पहले, अगर हमें कोई कुछ नहीं मानता था तो कोई बात नहीं। यहां तो भगवान का भी देश निकाला हो गया था। भगवान की भी कोई प्रतिष्ठा नहीं रही थी। यहां तो मूर्तियों की प्रतिष्ठा थी।

मैं कई बार इस बात की कल्पना करता हूँ। अगर इस जमाने को पत्थर का युग कहो तो वाकई ' 'पत्थर का युग' है। जो मान्यता इस जमाने में पत्थर की मूर्तियों को मिली वह तो दूसरों को नहीं मिली। हमारा हरियाणा भी इन बिमारियों के साथ जकड़ा हुआ है। अगर उसका किसी ने विरोध किया और खण्डन किया तो आर्य समाज के लोगों ने ही किया। आर्य समाज ने एक जागृति पैदा की। जो सामाजिक व्यवस्था थी, उसको तोड़ कर एक नई व्यवस्था पैदा करने का काम किया। मैं यह समझता हूँ कि भ्रमजाल तो आज भी उतना ही है। आज क्या हालत है?

कहीं आपको श्री गणेश जी दूध पीते मिलेंगे। मैं किसी की भावना को ठेस नहीं पहुंचा रहा। मुझे क्षमा करेंगे। लेकिन, आपसे सच कहने की अनुमति मिल रही है। आप बुद्धिजीवी व्यक्ति हैं। मुझे कहने दीजिए अपने मन की बात। कहीं आपको वास्तुकला के नाम पर, वास्तुशास्त्र के नाम पर, इधर–बैठना, कुर्सी का मुँह उधर हो, पीठ तुम्हारी उधर होनी चाहिए, क्या तमाशा बना रखा है?

उस देश का क्या बनेगा, देश की आजादी के 70 साल के बाद, जिसका एक मुख्यमंत्री यह कहता है कि मेरे ऊपर काला जादू कर दिया गया है, मेरी तो मौत हो जाएगी। इसलिए, वह दिन–रात अर्द्ध नंगा सोता है, इस बात को आप मानसिक आजादी कहोगे? वह नदी के अन्दर अर्द्ध नंगा होकर जल चढ़ाता है। क्या कहोगे आप इसे?

आज का बुद्धिजीवी कहीं इस भ्रमजाल में फंसा हुआ है। मैं समझता हूँ कि जैसी परिस्थितियां उस वक्त थीं, उससे कम बेहतर परिस्थितियां आज भी नहीं है। परिस्थितियां आज भी उसी तरह ही भयंकर हैं।

पंजाब यूनिवर्सिटी में एक बार कांग्रेस सरकार का अधिवेशन हुआ। मैं उन दिनों रिसर्च पर बैठा हुआ था। मैंने मुख्य अतिथि का प्रवचन सुना। उनका साईंस के बारे में लेक्चर था। मेरा मन सुनकर बड़ा गद्‌गद् हुआ कि हिन्दुस्तान में ऐसे विद्वान भी हैं। लेकिन अगले दिन अखबार पढता हूं तो अखबार में लिखा हुआ था कि 'थैंक्यू भगवन्तम'। उसके बाद वे एक ऐसे मन्दिर में गए, जहां आदमी कहता है कि यह तुम हो। कहने का तात्पर्य यह है कि जो बात क्लास रूम में पढ़ाने वाला व्यक्ति जब मंदिर में जाता है तो साईंस को घर पर छोड़कर जाता है और वहां कहता है कि आज मुझसे भूल हो गई। क्या कहोगे, इसको? साईंटिफिक कहोगे? इसको मानसिक गुलामी या मानसिक आजादी कहोगे? क्या कहोगे इसको? इस भ्रमजाल को तोड़ने के लिए, उस जमाने में आर्य समाज के लोगों ने शिक्षा का प्रचार–प्रसार करना चाहा।

दलित को धर्म का बिल्कुल हक नहीं था। वेद पढ़ने का हक नहीं था। मंत्र सुनने का हक नहीं था। हमारे महेशचन्द जी बहुत बड़े विद्वान हुए हैं। अरबी–फारसी के भी बहुत बड़े काबिल विद्वान थे। उनकी बेटी हिन्दू यूनिवर्सिटी बनारस से शिक्षित है। ये लगभग सन् 1944 की बात है। संस्कृत में एम.ए. करना चाहती थी, वेद विषय से। लेकिन उस वक्त वहां पर कुलपति कौन थे? डा. राधाकृष्णन। हिन्दूस्तान के महान दार्शनिक। उनकी विद्वता के लिए मैं सिर झुकाता हूँ। बाद में वे हिन्दूस्तान के राष्ट्रपति बने, जिसे 'फिलोस्फर किंग' भी कहते हैं, मैं सिर झुकाता हूँ।

लेकिन, जब उनके सामने यह सवाल पैदा हुआ कि इस बेटी को वेद विषय से एम.ए. करने की अनुमति हो। सर ने इसे रद्‌द कर

दिया और कहा कि लड़कियां वेद नहीं पढ़ सकतीं। मेरा वह ज्ञान कहां गया, जो मैं अपनी किताबों में लिखता हूँ? क्या वह मेरे जीवन में है? क्या मैं कोई मूल्य चुकाने के लिए तैयार हूँ? लंबे–चौड़े भाषण मैं दे दूँ, आप दे दो। दूसरों को उपदेश दे सकते हैं। लेकिन, अपने आप पर अनुसरण करते हुए झिझकते हैं। आर्य समाज के लोगों ने बड़ा आन्दोलन किया। मैं आभारी हूँ। मैं मदन मोहन मालवीय जी की पुण्य स्मृति में सिर झुकाता हूँ। उनका अभिनंदन करता हूँ। उनके कहने पर उस बच्ची को दाखिला तो मिल गया, लेकिन अगले साल वह विभाग तोड़ दिया गया। यह स्थिति है शिक्षा की।

आज भी जो कुछ बच्चों को दिया जाता है, वह उसको भारतीय मूल से उखाड़ रहा है। हम नहीं जानते वे क्या पढ़ा रहे हैं। हम नहीं जानते कि मेरे बच्चे को क्या पढा रहे हैं? हम उसको क्या बनाना चाहते हैं? सरकार मेरी पार्टी की हो, सरकार किसी भी पार्टी की हो। लेकिन, हमारा जो दृष्टिकोण है, उस तरह का दृष्टिकोण नहीं बन पाया, जिस तरह के वे लोग जिन्होंने बलिदान दिया, शहादत दी, कुर्बानी दी, जिस तरह का उन्होंने त्याग किया।

भगवान दास माहर ने एक किताब लिखी है, 'यश की धरोहर'। उस किताब में उसने कुछ शहीदों के संस्मरण लिखे हैं और उसमें वे लिखते हैं कि लोग हमें देखकर ये समझते हैं कि हमने बड़ा बलिदान दिया। बलिदान तो उन लोगों का था, जिन लोगों ने ये काम किया। इसलिए किताब का नाम रखा, 'यश की धरोहर'। हमारे सिर धरती माँ का जो बोझ था, वो उतारना चाहा।

उसमें चन्द्र शेखर आजाद के लिए एक संस्मरण लिखा है। उसकी माँ को, झोंपड़ी में रहने वाली एक माँ, जिसका एक बेटा चला

गया, आजादी के लिए और इन्होंने भगवान दास मोहर और उनके साथियों में से एक सदा शिवराव भाऊ ने माँ की सेवा की। तो माँ कभी–कभी प्यार से कहती कि सत्तू! (सदाशिवराव), सत्तू अगर मेरा चन्दू (चन्द्रशेखर) आज जिन्दा होता, तो तुमसे ज्यादा तो वह भी मेरी सेवा नहीं कर सकता। लेकिन, उसमें वह एक जगह पीड़ा का फिकरा भी लिखता है कि लोग आते–जाते कहते कि माँ तेरे बेटे का बड़ा नाम है। उसकी जय–जयकार हो रही है। वे तो चले जाते, यह कहकर। पर माँ से पूछो कि उसके दिल पर क्या बीतती थी। उसका एक बेटा था, वही चला गया। मैं कई बार सोचता हूँ कि लोग यह तो चाहते हैं कि कोई दयानंद बन जाए। लेकिन दयानंद के लिए घर छोड़ना पड़ता है। दयानंद बनने के लिए जहर के प्याले पीने पड़ते हैं। दयानंद बनने के लिए हर किस्म का अपमान सहन करना पड़ता है। फिर वे कहते हैं कि तुम्हारे घर से बन जाए, मेरे घर से न बने। आज यही तो एक समस्या है कि हम अपने से बात शुरू नहीं करना चाहते। हम दूसरे आदमियों से बात शुरू करना चाहते हैं। इसीलिए, एक आन्दोलन शुरू किया गया था शिक्षा का। चाहे वे लाला लाजपत राय थे और चाहे इस क्षेत्र में चौधरी मातूराम जी थे। आर्य समाज के प्रभाव में आकर इन लोगों ने जो आर्य समाज का काम किया, जो शिक्षा का काम किया, दिमागी गुलामी को तोड़ने का। देश की आजादी लाने के लिए, दिमागी गुलामी और सामाजिक गुलामी तोड़ने का उतना ही जरूरी था। इसलिए महात्मा गांधी कहीं चरखा बुनना शुरू कर देते, कहीं कंपनी के खिलाफ काम करना शुरू कर देते, कहीं देवनागरी के प्रचार का काम शुरू कर देते। क्योंकि ये एक दूसरे के पूरक हैं, एक दूसरे के जरूरी तत्व हैं।

लाला लाजपतराय जी ने दयानंद कॉलेज लाहौर की स्थापना भी की थी। तीन व्यक्तियों का सबसे बड़ा योगदान है, लाला लाजपत राय, पंडित गुरूदत्त और महात्मा हंसराज। उन्होंने इधर आकर शिक्षा का प्रचार किया। यहां चौधरी रणबीर सिंह के पूर्वजों ने 'एंग्लों–संस्कृत जाट स्कूल' की स्थापना की। क्योंकि जो आर्य समाज के लोग थे वे स्कूलों का डी.ए.वी. नाम रखते, जिसका मतलब था 'दयानंद एंग्लो वैदिक, आर्य 'नाम रखते थे या 'एंग्लो संस्कृत' रखते थे, जो आज दूसरे नाम से जाना जाता है। वह एक प्रचार था, वह एक प्रभाव था और वह संस्कृति जीवित है, जहां स्वामी श्रद्धानंद ने गुरूकुल की स्थापना की, वहां इस परिवार ने, अर्थात चौधरी मातूराम के परिवार ने, चौधरी रणबीर सिंह के परिवार ने और पीरू सिंह के परिवार ने उसी परंपरा को जीवित रखते हुए, यहां अनेक गुरूकुलों की स्थापना की, ताकि बच्चों को शिक्षा मिले। मैं इसको एक बहुत बड़ी श्रद्धांजली मानता हूँ, कि चौधरी भूपेन्द्र सिंह हुड्डा जी ने उसे विश्वविद्यालय बनाया। उस गुरूकुल को जो महात्मा फूल सिंह ने स्थापित किया था, नारी शिक्षा के लिए, बहुत बड़ा काम था। सामान्य काम नहीं था। मैंने पुराने लोगों से पूछा कि तुम्हे कैसा लगता था कि जब यहां गुरूकुल स्थापित हुआ? उन्होंने कहा कि हमें लगता था कि यह बहुत बड़ा प्रकाश का केन्द्र है। अगर अंधेरे के समय किसी वृद्ध आदमी से कोई बेटी रास्ता पूछती, कि मुझे गुरूकुल जाना है तो वह यह कहता कि बेटी मेरे साथ आओ, मैं तुम्हें छोड़ करके आऊंगा। वह उसको अपनी बेटी मानता था। उसको लगता था कि यह संस्था कोई पढ़ाई का सामान्य केन्द्र नहीं हैं। बल्कि, यह एक बहुत बड़ा प्रकाश का स्तम्भ है। वह गुरूकुल यहां चला। उसने ज्ञान का प्रकाश किया, इस क्षेत्र के अन्दर। ज्ञान को

बढ़ावा दिया, इस क्षेत्र के अन्दर और उसको आज के जमाने के हिसाब से जब महिला विश्वविद्यालय का रूप मिला है, तो मैं यह समझता हूँ कि उन लोगों को जो शिक्षा के क्षेत्र से जुड़े हैं, उन लोगों को, जिन्होंने नारी शिक्षा के लिए काम किया है, उनके प्रति आपके क्षेत्र की, आपके प्रतिनिधि की, आपके मुख्यमंत्री की, मेरे मुख्यमंत्री की यह एक सबसे बड़ी श्रद्धांजली है, जो उन्होंने उनको अर्पित की है। किसी–किसी को इस बात का सौभाग्य प्राप्त होता है कि पूर्वजों ने जो पौधा लगाया हो, उसको कोई बच्चा आगे बढ़ा पाए, वह ही आदमी अपने आपको अच्छी संतान सिद्ध कर सकता है, जो अपने माँ–बाप के नाम को रोशन करे, जो उनके काम को आगे बढ़ाए। उस आदमी के सिवाए, किसी दूसरे आदमी को यह श्रेय नहीं जा सकता।

धर्म त्याग कितने थे इस देश में एक समय। दिमागी गुलामी कितनी थी, इस देश के अन्दर। एक लक्ष्मीचन्द अग्रवाल नाम के व्यक्ति थे। भगवान दास ने उसको विदेश भेजा। वहां से वह कोई काम सीख करके आए। नील बनाना सीख कर आए, रंग बनाना, साबून बनाना, तेल बनाना सीखकर आए। जब वह काशी वापिस आए तो अग्रवाल सभा ने प्रस्ताव पारित कर दिया कि हम अपनी सोसायटी में नहीं रखेंगे। इसने तो विदेश यात्रा कर ली। यह तो इसमें शामिल नहीं हो सकता। एक बड़े व्यक्ति ने, भगवान दास के बड़े भाई ने जब इसके ऊपर एक सभा करनी चाही तो पंडितों को बुला करके, व्यवस्था करानी चाही, तो उस जमाने में काशी के पंडित होते थे, शिव कुमार जी। मैं अपने शब्दों में नहीं कह रहा हूँ। एक बलदेव उपाध्याय जी ने बहुत मोटी किताब लिखी है, 'काशी की पांडित्य परंपरा'। उसमें पिछले सात सौ–आठ सौ साल से जो काशी के विद्वान हुए हैं, उनकी चर्चा की है।

उस जमाने में शिव कुमार जी बहुत बड़े विद्वान माने जाते थे। उस विद्वान की चर्चा करते हुए वह कहते हैं कि जब उनसे यह कहा गया कि आज की मिटिंग में आप आएं। कहने लगे सेठ जी, आप बुलाओ, मैं न आऊं? यह तो सम्भव नहीं है। लेकिन, मैं आ नहीं सकता, इस मिटिंग में। कारण यह है कि यह तो विदेश यात्रा करके आए हैं। शास्त्रों में निषिद्ध हैं। इसलिए, मैं इसका समर्थन नहीं कर पाऊंगा। इसलिए मीटिंग में नहीं आ सकता।

ऐसी दास्तां की सीमा देखो। एक बुढिया माँ का पति गुजर गया। उसकी दो बेटियां हैं। बड़ी बेटी का रिश्ता नहीं हो रहा था। ये भी उसी किताब में लिखा हुआ है। पौराणिक पंडित की लिखी किताब की बात कर रहा हूँ। अपनी घर की किताब की बात नहीं कर रहा हूँ। छोटी बेटी का रिश्ता होने लगा। छोटी बेटी का जब रिश्ता होने लगा तो पंडित जी की व्यवस्था बड़ी तगड़ी थी। वह रिश्ता नहीं हुआ। शिव कुमार जी को बुलाया। एक गिन्नी स्वामी को उन्होंने दी। गिन्नी को वापिस करते हुए उन्होंने कहा– मैं यह अधर्म नहीं कर सकता कि जब तक बड़ी कुंवारी बैठी है, छोटी का विवाह हो जाए। यह हालत थी उस समय। वही पंडित जब पहला विश्व युद्ध हो रहा था और हिन्दुस्तान के कुछ लोग आगे जर्मनी में लड़ने के लिए गए, ठण्डे प्रदेश के अन्दर और वहां उन्होंने मांस खाने से इंकार कर दिया तो उन्होंने कहा कि हम तब माँस खा सकते हैं, अगर इसकी अनुमती हमें शिव कुमार शास्त्री दे दें।

जब शिव कुमार शास्त्री बेटी के विवाह की अनुमती नहीं दे सकते, शिव कुमार शास्त्री हिन्दुस्तान में तेल और साबून बनने के कारखाने की अनुमती नहीं दे सकते। लेकिन 'आपत–धर्म' कह करके मांस खाने की अनुमती दे सकते है, यह असलियत है।

एक बात को कहकर अपनी बात समाप्त करना चाहूँगा। बात दरअसल यह है कि :

थमते–थमते थमेंगे आंसू,
ये रोना है, कोई इसे सीख ले।

लेकिन सिर्फ एक प्रसंग कहना चाहता हूँ। मातूराम जी से जुड़ा है। उन्होंने आर्य समाज से प्रभावित होकर यज्ञोपवित पहन लिया। क्या यह एक छोटी घटना है? एक तूफान मचा है। तूफान बरपा हुआ है। अरे! एक शुद्र को, जाट को यज्ञोपवित कैसे संभव है? सबने आकर कहा कि इस यज्ञोपवित को निकाल दो। उन्होंने कहा कि क्या सोचकर जनेऊ गले में डाल लिया? इंसान बनो।

तब चौधरी मातूराम ने कहा, ''सुनो! यज्ञोपवित एक मानस के गले पड़ा हुआ है। रूख पर टंगा हुआ नहीं है। सिर कट सकता है, लेकिन यज्ञोपवित नहीं उतर सकता।'' आप इस बात का महत्व जानना चाहते हैं? मैं आपको अपने शब्दों में समझाने का प्रयास करता हूँ।

बात संभवतः सन् 1673 की है। जिसको भारत में आज हिन्दू कुल गौरव कहते हैं, जिसके नाम की आज बड़ी–बड़ी दुहाई दी जाती हैं, जय–जय के नारे लगाए जाते हैं, जिसका यशोगान होता है। मैं भी उसमें शामिल हूँ, यशोगान में। शिवाजी छत्रपति! शिवाजी छत्रपति को एक साधारण जागिरदार का बेटा कहा जा सकता है। मुसलमान बादशाह तो उसको क्या शहीदी देंगे, यहां के जो हिन्दू रजवाड़े थे, वह भी उसको अपने से छोटा मानते थे। किन्तु, बराबर का अधिकार देने के लिए तैयार नहीं थे। उसके भोजन के ऊपर सरसराहट हुई और उसने दान देकर सबको अपने साथ भोजन को समाप्त करने के लिए

प्रयास किया। मन में आया उनके, अगर मेरा राज्याभिषेक हो जाए तो बहुत काम करके दिखाऊं। लेकिन राज्याभिषेक कैसे हो? वो तो 43 वर्ष के थे। 22 वर्ष के बाद पौराणिक पंडितों के मुताबिक यज्ञोपवित का अधिकार नहीं था। इसमें आपको बीस किताबें कोट कर सकता हूं, जिनमें से पाँच–सात–आठ किताबों की चर्चा अपनी इस किताब में की भी है।

ब्राह्मणों ने कह दिया कि तुम शुद्र हो। मैं उसकी बात कह रहा हूँ। शिवाजी की बात कह रहा हूँ। मातूराम जी बहुत बाद में आए। अगर, तब यह हालत थी तो शिवाजी के जमाने में क्या स्थिति थी? यज्ञोपवित का अधिकार नहीं, यज्ञ में बैठने का अधिकार नहीं। शिवाजी को बड़ी ठेस लगी। उसको कोई क्षत्रिय मानने के लिए तैयार नहीं था। उन्होंने अपने एक मंत्री को भेजा, काशी। बहुत पैसे देकर भेजा। पंडितों को दक्षिणा देनी चाही। सभी ने इंकार कर दिया, शुद्रों का यज्ञोपवित नहीं हो सकता। यहां गौ–भार्गव का तो हो सकता है सम्मान, लेकिन गौ–रक्षक पर उसका सम्मान यज्ञोपवित नहीं हो सकता। आखिर में उन्होंने एक विद्वान को पकड़ा, आजाद दत्त को। वे जन्मना महाराष्ट्रीयन थे। महाराष्ट्र गौरव के नाम से उसको ललकारा। उसको कुछ पैसा भी दिया। बुला के उसका मान–सम्मान भी किया। फिर राजस्थान के एक राजघराने से वंशवृक्ष निकालकर किसी तरह से जोड़ा कि यह क्षत्रिय है, ये शुद्र नहीं है। यहां हर किस्म का काम है। लेकिन, यहां बुरा भी होता है, उल्टा भी होता है। दक्षिणा दे दो तो उसका प्रकोप टल भी जाता है। यहां हर किस्म का काम है। दुकानदारी है। इस हाथ दे, उस हाथ ले। सौदा बहुत खरा है। 4 महीने तक 11 हजार पण्डित, एक लाख से ज्यादा व्यक्ति रायगढ़ राजधानी के अन्दर टिके रहे। हर

किस्म का वहां पर अनुष्ठान किया गया। पूरा दान हुआ। सोना–चाँदी, किसी भी चीज का नाम ले लो, अन्न का नाम ले लो, धातू का नाम ले लो, हीरे–जवाहारात का नाम ले लो, वो सारे का सारा दान किया जाता रहा। ये मैं नहीं कहता, उस जमाने के पण्डित कहते हैं। इस बात के लिए कि यज्ञोपवित संस्कार हो। इस बात के लिए कि शिवाजी को यज्ञ करने का अधिकार मिल जाए। इस बात के लिए चार महीने बहुत बड़ी जद्दोजहद रही और उसके ऊपर सन् 1674 के आसपास खर्च की गई राशि का जो ब्यौरा तैयार किया इतिहासकारों ने, वह 5 करोड़ रूपये थे। आज कितनी बड़ी राशि होती है यह। और एक दिन में जितना राज्याभिषेक हुआ, सर जादूनाथ सरकार कहते हैं, उस एक दिन में 50 लाख रूपया खर्च हुआ। आज आप उसको फिक्स डिपोजिट करें, पाँच–साल बाद उससे तुलना करें और फिर अन्दाजा लगाएं कि वह कितना था? तो क्या यह कोई छोटी क्रांति थी कि गाँव के एक आदमी को, जिनके दिल के अन्दर देश भावना की प्रेरणा थी, उसको इस बात के लिए प्रेरित किया जाए कि तू यज्ञोपवित ले? इसको इस बात के लिए प्रेरित किया जाए कि आप यज्ञ करो। आप यज्ञ को ले करके आगे बढ़ो और ये कम कुर्बानियां हैं क्या उन लोगों की, चौधरी मातूराम जी जैसों की, जिन्होंने सारी सोसायटी का विरोध सह कर, उस विचारधारा के ऊपर खड़ा हो कर काम किया। उस परिवार के एक महान सपूत चौधरी रणबीर सिंह जी, जो सारी उम्र जिसे, उसी विचारधारा को जिए, जो महात्मा गांधी और ऋषि दयानंद की ि वचारधारा को जीए। मैं इसे कहां–कहां स्वदेशी के साथ जोड़ूं, किस बात के साथ जोड़ूं, बात लंबी हो जाएगी, न मैं आपका इतना अधिक समय लेना चाहता हूँ और मेरे ऊपर भी एक कोड़ा लगा हुआ है। आज

संसद में व्हिप जारी है। मुझे भी जल्दी से जल्दी वहां जाना चाहिए। मैं इन शब्दों के साथ आपको जहां इस बात के लिए बधाई देता हूँ कि आपने एक बड़ा अच्छा आयोजन किया है, वहीं उन सारे महापुरूषों को जिन्होंने इस क्षेत्र की उन्नति के लिए, देश में जागृति पैदा करने के लिए, सूर्य का प्रकाश हर झोंपड़ी में पहुंचाने के लिए, वैदिक व्यवस्था को जीवित रखने के लिए, पुराने ऋषि की गाथाओं को जीवित रखने के लिए काम किया है, मैं उनको श्रद्धापूर्वक नमन करता हूँ। परमपिता परमात्मा सबके परिवारों पर सुख–शांति की वर्षा करे। ओउम शांति।।

संगोष्ठी–भूमिका

हरियाणा के विशेष सन्दर्भ में भारत का स्वतन्त्रता आन्दोलन

23–24 मार्च, 2011

सभागार, होटल एवं पर्यटन प्रबंधन संस्थान, म.द.वि.परिसर, रोहतक

संगोष्ठी में आप सब का स्वगत करते हुए चौधरी रणबीर सिंह शोधकेन्द्र की ओर से हरयाणा के विशेष सन्दर्भ में भारत के स्वतन्त्रता आन्दोलन पर इस वर्ष के लिए संवाद की पृष्ठभूमि पर एक–दो बात रखना आवश्यक लगता है। संगोष्ठी का विषय चयन किसी खानापूर्ति की सरल कसरत का अंग न हो कर इस समझ का फल है कि भारत के जनसंघर्षों को आंकने पर आयातित दृष्टिदोष अभी भी हावी है जिससे वर्तमान व भविष्य हेतु सीखने का काम सामन्यतः अधूरा लगता है। यह संवाद इसलिए मात्र आरम्भिक कडी है।

जानी हुई बात हैं कि यहां पर ब्रिटिश शासन के विरुद्ध तन कर खड़ा होने का ठोस कारण रहा है, जिसकी रणनीति तथा रणकौशल को प्रभावित करने में समय–समय की आर्थिक स्थिति के अतिरिक्त दो प्रमुख अनुभवों ने काम किया लगता है। इनमें एक अनुभव अंग्रेजों द्वारा शासनपद्धति के स्वरूप निरंकुश एवं दमनकारी राजसत्ता से सामना था जो भारत की सोच–समझ से उलट पड़ता था। दूसरे, रूस में घटित 1917 की नवम्बर क्रांति से उत्पन्न प्रभाव था जिसने दुनियां के मुक्ति आन्दोलन को गहरे से उकसावा दिया व उभरते हुए नेत्त्व ने भी इसे मन पर बैठाया।

याद रखने लायक हैः भारतीय उप–महाद्वीप लम्बे काल तक ब्रिटिश व्यापारी तहजीब से संचालित ऐसी शासनपद्धति की गुलामी का

शिकार रहा जो यहां की सभ्यता–संस्कृति से उलट थी और जिसकी उसे भारी कीमत अदा करनी पड़ी। इस क्षति की भरपाई करना अभी भी कठिन हो रहा है। यू ंतो विश्व में ऐसे बहुत देश हैं और बहुत कौम हैं जिन्हें परतन्त्रता से गुजरना पड़ा है। अमेरिका में ही रैड इंडियन व अश्वेत नीगर पर इतिहास में जो बीता वह कम दर्दनाक अनुभव नहीं है। कोई नहीं है जो आज बता दे कि रैड इंडियंस के साथ अमेरिका में क्या बीती और इनके बलबूते अमेरिका को 'आधुनिक' व 'विकसित' राष्ट्र बनाने में वहां की इस मूल आबादी को कैसे बली चढाया गया। उस देश के नामी थ्योडर रूज्वैल्ट ने 1885 में ऐलानिया कहा थाः 'आप इतना दूर भले न जाएं कि मरा हुआ रैड इंडियंस ही भला रैड इंडियंस होता है' किन्तु, मैं मानता हूं कि दस में नौ तो ऐसे ही होते हैं और मुझे दसवें के बारे में अधिक जांच–परख करने की आवश्यकता नहीं है। एक सामान्य रैड इंडियंन से हमारा अपना सबसे लफंगा चरवाहा कहीं बेहतर नीति–सिद्धांत का धनी होता है।' आगे चलकर फतवा दिया गया कि रैड इंडियन को बेदखल करने हेतु 'कोई भी दलील ठीक है। यदि इंडियन घुमक्कड खानाबदोश है तो, उसे जमीन रखने का अधिकार नहीं है। यदि वह निवासी है तो, वह जमीन रखने के लायक नहीं है। यदि उसने जमीन रखने के लिए कोई उपबंध किया है तो अमेरिका को जब स्थिति बदल जाए तो ऐसे उपंध को समाप्त करने का अधिकार है।' शैक्सपीयर ने इंगलैण्ड के ऐसे ही चरित्र की खूब व्याख्या की है।

भारतीय उप–महाद्वीप का कारवां कुछ अन्तर से गुजरा है। गुलामी का काल यहां रैड इंडियंस से कुछ अलग नहीं रहा और भेडिये का तर्क यहां भी उसी तर्ज पर चला; बल्कि अधिक घातक परिणाम के साथ यहां नफासत बरती गई। रैड इंडियंस की तरह

यहां नसल मिटाने वाला नरसंहार नहीं हुआ परन्तु, यहां के मूल निवासियों की हैसियत गुलाम की बना कर रखी। उनके गौरव, उनकी संस्कृति, उनकी जीवनशैली को पलट कर जड़विहीन बनाने पर जान लड़ा दी और एक नकली किन्तु मनमोहक 'आधुनिकता' का पैरोकार बना डाला। रैड इंडियंस की तरह उनका शिकार तो नहीं खेला किन्तु, अपने लिए बिन इंसानी अधिकार मेहनती श्रमिक के बतौर उसे जिंदा रखा।

प्लासी के मैदान में 23 जून 1757 को लडाई जीतने के बाद ईस्ट इंडिया कम्पनी ने मनचाहे दोहन हेतु इस महाद्वीप पर अपने शासन की पकड़ मजबूत करके अंत तक इसे अपने कब्जे में रखने के लिए सब तरह के अच्छे–बुरे हत्थकंडे प्रयोग किए। इसका विरोध उठना था, उठा। इस कड़ी में उसे 1857 में देशव्यापी बगावत कां सामना करना पड़ा। परिणाम में यहां सीधे ताज का शासन कायम हुआ ताकि औपनिवेशिक दोहन का लक्ष्य आगे बढ सके। इस युद्ध में भारत को मिली हार का एक परिणाम यहां राष्ट्र की चेतना के फलित होने में हुआ। यह इतिहास है। तथ्य यह कहानी कहते हैं। जो हो, इस मुक्ति आन्दोलन के चरित्र चित्रण पर गम्भीर मतभेद हैं। यह इतिहासकारों, समाजवेत्ताओं व राजनीतिक कार्यकत्ताओं के लिए चुनौतीपूर्ण कार्य शेष है।

ब्रिटिश सत्ताधीशों ने भारत को अपने ताज का अनमोल हीरा बना कर रखने में जो बन पड़ा वही किया। वे इसकी आत्मा को निचोड़ कर रखना चाहते थे, जिसके लिए गलत व सही के अन्तर की समझ को पलटना अत्यंत आवश्यक माना गया। इस लक्ष्य हेतु अलग तरह की शिक्षा पद्धति को रचा गया, सर्वथा अलग तरह के जीवनमूल्यों, सामाजिक मूल्यबोध व नीति–सिद्धान्त की समझ को खड़ा किया गया

जो यहां की पद्ध के उलट पड़ते थे किन्तु, एक औपनिवैशक लुटेरे शासन की मंशा को पूरा करने में सहायक हुए। साथ ही, यहां के जनमानस के जहन में राज के भय को बैठाने के भरे–पूरे तन्त्र व उसके अनुरूप वैचारिक अवधारणाओं की रचना की गई। अपने लायक व्यवस्था की रचना करके ब्रिटेन ने भारत को खोखला कर दिया, यह आंकडो की दुनियां पर भरोसा करने वाले भी मानते हैं। मनुष्य सदा के लिए गुलाम नहीं रह सकता है; अपनी ओर से बचाव की ऐसी सब पुख्ता रणनीति के बावजूद इस दमन–अत्याचार का विरोध उठना ही था, प्रबल उठा।

ब्रिटिश शासन के विरुद्ध संघर्ष के ठोस व संगतपूर्ण कारण थे। भारत के लिए यह शासन अत्न्त कष्टप्रद और खोखला करने वाला साबित हुआ। इससे आम आदमी त्रस्त हो उठा, भूख, अकाल, व गरीबी ने पैर पसार लिए। इसे अंधा युग कहने में अतिश्योक्ति नहीं होगी। वर्ष 1900 तक लगभग पचास साल की अवधि मे 2 करोड लोग अकाल से मौत में मुंह में चले गए। अभाव की स्थिति में अनाज का निर्यात किया गया। 1914 में यह 1901 के मुकाबले 22 गुणा अधिक था। वर्ष 1858 में 30.8 लाख पौंड रकम का अनाज बाहर भेजा गया जबकि 1914 में यह 190.3 लाख पौंड रकम का था! इस परिस्थिति के जवाब में पंजाब में 1905–1907 का *'पगडी संभाल जट्टा'* किसान आन्दोलन उठा जिसको लाला लाजपत राय के सहयोग से सरदार अजीत सिंह जैसे आग उगलने वाले नेता ने स्वतन्त्रता आन्दोलन के साथ ग्रामीण क्षेत्र को जोड़ने में पहल की। रोहतक के आसपास वाले क्षेत्र में इस काम के लिए सरदार अजीत सिंह ने सांघी निवासी अपने कुलमित्र चौधरी मातू राम को जोड़ा। यह बेजोड़ हिम्मत व समझ का काम था क्योंकि अंग्रेज शासक उस समय यहां आर्य समाज की कार्यक्रमों और सरदार

अजीत सिंह की गतिविधियों से बेहद सतर्क था। उसे लग रहा था कि 1857 की 50वीं वर्षगांठ पर यहां कुछ खतरनाक पक रहा है!

स्पष्ट था स्वतन्त्रता आन्दोलन 1857 की हार के बावजूद रुका नहीं था। तब भी, इतिहासकारों व समाजशास्त्रियों में तीव्र मतभेद है कि 1857 को कैसे समझा जाए। कोई इसे अंग्रेजों के बताये अनुसार मात्र सिपाही विद्रोह चित्रित कह कर प्रसन्न होते हैं तो कुछ इसे भारत का पहला स्वतन्त्रता आन्दोलन मान कर चल रहे है जबकि अनेक इसे जन–क्रांति कह कर पुकारते हैं। बहुत बुद्धिजीवि इसे आज तक सामंत एवं रूझिवादी शक्तियों की बगावत बता कर व्याख्या करते हैं। अर्थात तथ्यों को अपने–अपने नजरिये से देख कर अपनी सुविधा या इच्छा के लायक नतीजे पेश कर रहे हैं ताकि भविष्य का नक्शा तैयार कर सकें, भले इससे इतिहास की उपेक्षा होती है।

ऐसा ही कुछ अगले चरणों में आन्दोलन को लेकर हुआ है। 1857 में वर्चस्व बना लेने के बाद चले दमनकारी अभियान की प्रतिक्रिया हुई। अंग्रेज शासन के आतंक के जवाब में प्रति–आतंवादी पहल खड़ी हुई। ढाका, चिटांगांव, लाहौर, सहारनपुर, कानपुर, आगरा, रोहतक के अतिरिक्त दक्षिणपूर्व के अनेक क्षेत्रों में, जैसे शांघाई, सिंगाहपुर बैगकॉक आदि स्थानों से यह लडाई चली। इसके बाद, एक ओर कांग्रेस का गठन कर सुरक्षित राह निकालने का प्रयास आरम्भ हुआ तो दूसरी ओर, रूस की समाजवादी क्रांति से प्रभावित हो कर क्रांतिकारी सोच को लेकर लहर उठी। बाद में, स्वयं काग्रेस के अन्दर गर्म दल व नरम दल बने। इन विभिन्न धाराओं को लेकर चले इस स्वतन्त्रता आन्दोलन को श्रमिक, किसान व अन्य तबकों का समर्थन था। मोहनदास कर्मचंद गांधी के आने पर आन्दोलन के रणकौशल व रणनीति के चरित्र में खास बदलाव देखने को मिलता है। उसके बाद

असहयोग व सिविल नाफरमानी जैसे तौरतरीके सामने आए। आमजन को आन्दोलन से जोड़ने का नया मार्ग तैयार हुआ। फिर, भारत छोड़ो आन्दोलन में लोगों का बदला हुआ तेवर सामने आया। इन सब पर देश में बहुत साहित्य छपा है। किन्तु, कारण जो हों कुछ छिटके प्रयासों के बावजूद, अनेक धाराओं की संतुलित समीक्षा का अभी भी अभाव है।

एक समय बीत जाने पर पुर्खों ने इतनी कुर्बानी देकर जो संघर्ष किया था उसकी समझ का नयी पीढी में अभाव अब नुक्सान देने की स्थिति में पहुंच चुका है। इसमें इस आन्दोलन पर बुद्धिजीवि क्षेत्र में पनपी भैंगी व तिरछी समझ प्रमुख कारण है। उत्पन्न हुए इस अभाव के चलते स्वयं स्वतन्त्रता के निहित मूल्य में गिरावट को देखा जा सकता है। इससे देश घाटे में रहने वाला है। बचाव के लिए आवश्यक है कि गुलामी के काल की संतुलित समीक्षा हो और उसकी पीडा को ठीक से याद को ताजा करते रह कर स्वतन्त्रताबोध की सही समझ खड़ी हो, उसके नायकों की देन को परखा जाए और नयी पीढी में सामाजिक दायित्वबोध की चेतना पैनी हो। अन्यथा, आज के खड़े बिगडैल व निकृष्ट व्यक्तिवाद से जो हानि होगी उसकी भरपाई असम्भव है।

आज का जो हरयाणा राज्य है उसमें स्वतन्त्रता आन्दोलन दो तरह के क्षेत्रों में चला। एक जो क्षेत्र सीधे ब्रिटिश शासन के अधीन थे, उनका एक स्वरूप रहा। रियासतों में उसको प्रजा मण्डल के नाम से जाना जाता है। *प्रजा मण्डल आन्दोलन* की आवश्यक स्तर की समीक्षा होनी चाहिए। साथ ही, यहां *आर्य समाज* की भूमिका को चिन्हित करने की आवश्यकता है। इसी तरह महिला जगत, किसान, श्रमिक व युवाओं की भूमिका को ठीक से आंका जाना चाहिए।

भारत के स्वतन्त्रता आन्दोलन की अपनी विशिष्टताएं हैं। जटिलताएं हैं। ब्रिटिश शासन के विरुद्ध इतने लम्बे चले आन्दोलन के ठोस कारणों को चिन्हित किए जाने का काम अधूरा है। इसके पीछे कौन और कैसी आर्थिक स्थिति रही जिसने आम लोगों को उबाल के स्तर तक लाने का काम किया, इसकी व्याख्या उभरे। बहुलतावादी देश को एक सूत्र में बांधने के कौन आधार थे कि एकजुट हो कर देश आजादी के लिए खड़ा हुआ। कहां गच्चा खाया, स्पष्ट बयान हो।

अभी तक आन्दोलन पर उपलब्ध साहित्य अनेक प्रश्नों को स्पष्ट करने में पूरी तरह सक्षम नहीं है। परिणाम स्वरूप छात्र एवं शिक्षक अनेक पहलुओं पर गलत अवधारणाओं के आधार पर काम करने की स्थिति में पड़ते हैं। आवश्यकता है कि यह स्थिति बदले। अन्यथा, देश बौद्धिक तौरपर एक तरह के बौनेपन की हालत में जा पहुंचेगा जबकि, उसकी जरूरत आगे बढने की है ताकि वह स्थिति प्राप्त हो जिसके लिए पूर्वजों ने इतना जटिल संघर्ष चलाया था। औपनिवेशिक नस्ल के अनेक पक्ष अभी यहां प्रचलन में हैं जो आगे की गति में अवरोधक का काम कर रहे हैं। ये चिन्हित हों।*चौधरी रणबीर सिंह शोधपीठ* अपने निर्धारित लक्ष्य के अनुसार प्रतिबद्ध है कि स्वतन्त्रता आन्दोलन पर राष्ट्रीय परिपेक्ष्य में नयी दृष्टि से सर्वांगीण परख हेतु विचार मंथन हो और सही सबक लिए जाएं ताकि बहुमूल्य प्राप्त स्वतन्त्रता को अक्षुण्ण रखना सम्भव हो और इसे सशक्त किया जा सके।

चौधरी रणबीर सिंह शोधपीठ
महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक

प्रकाशक :
चौधरी रणबीर सिंह शोधपीठ
महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक